प्रवाह

अमर उजाला

नई दिल्ली ■ बुधवार, 1 नवंबर 2017

निर्भीक पत्रकारिता का सातवां दशक

स्थापना वर्ष : 1948

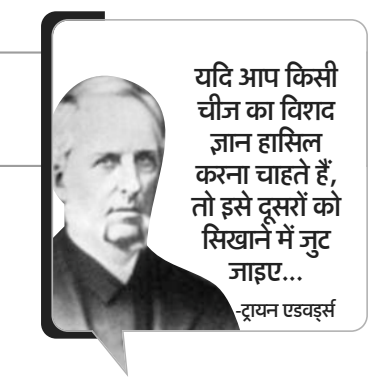

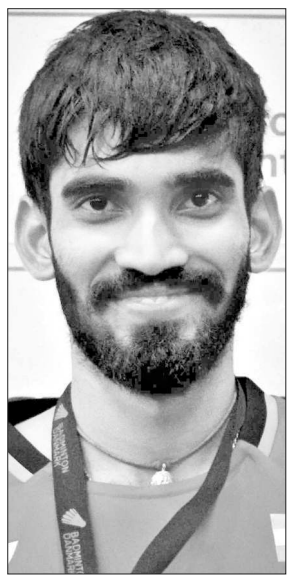

बैडमिंटन के लिहाज से भारत का यह सबसे संभावनाशील दौर है। बेशक, श्रीकांत ने कहा है कि वह नंबर वन बनने के बारे में विचार न कर अपने खेल पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं, लेकिन उन्होंने खेल प्रेमियों के मन में उम्मीद जगा दी है कि शिखर उनसे दूर नहीं है।

बैडमिंटन का नया सितारा

किदांबी श्रीकांत के पेरिस ओपन सुपर सीरीज बैडमिंटन स्पर्धा का खिताब जीतने के साथ ही करीब दो दशक बाद एक बार फिर पुरुष बैडमिंटन में भारत की धमक नजर आ रही है। महज सात महीने के दौरान श्रीकांत ने इंडोनेशिया, ऑस्ट्रेलिया और डेनमार्क सुपर सीरीज के बाद यह चौथा सुपर सीरीज खिताब जीता है और एक कैलेंडर वर्ष में ऐसा कमाल करने वाले वह दुनिया के चौथे 'शटलर' हैं। चौबीस वर्षीय श्रीकांत का आंध्र प्रदेश के गुंटुर से अंतरराष्ट्रीय फलक तक का यह सफर युवाओं के लिए वाकई काफी प्रेरणादायक है। भूलना नहीं चाहिए कि पिछले वर्ष टखने की चोट की वजह से उन्हें काफी समय कोर्ट से बाहर रहना पड़ा था और जब लौटे तो पूरे दमखम के साथ। उनका यह दमखम पेरिस ओपन के सुपर सीरीज के फाइनल में तब नजर आया, जब उन्होंने जापान के केंटा निशिमोता को 21-12 और 21-13 से ध्वस्त कर दिया। कमाल की बात यह है कि उन्होंने डेनमार्क सुपर सीरीज जीतने के हफ्ते भर के भीतर ही इस खिताब पर कब्जा किया है। अपनी इस जीत के लिए यदि वह अपने मार्गदर्शक पुलेला गोपीचंद को श्रेय दे रहे हैं, तो यह गलत नहीं है। दरअसल गोपी ने दिखाया है कि वह भारत की उभरती बैडमिंटन प्रतिभाओं की क्षमता को किसी की भी तुलना में अधिक जानते हैं, फिर वह साइना नेहवाल और पी वी सिंधु हों या फिर श्रीकांत। इधर कुछ वर्षों में साइना नेहवाल और पी वी सिंधु ने महिला बैडमिंटन में भारत की दमदार उपस्थिति दर्ज करवाई है, तो श्रीकांत के साथ ही एच एस प्रणय और साई प्रवीण के रूप में पुरुष बैडमिंटन अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बना रहा है। श्रीकांत की ताजा उपलब्धि ने खुद पुलेला गोपीचंद के शिखर के दिनों की याद दिला दी है, जब 2001 में उन्होंने ऑल इंग्लैंड ओपन बैडमिंटन चैंपियनशिप जीती थी। उनसे पहले 1980 में प्रकाश पादुकोणे ने दुनिया का नंबर वन खिलाड़ी बनकर भारत को सम्मान दिलाया था। तुलना न भी की जाए, तो भी देखा जा सकता है कि बैडमिंटन के लिहाज से भारत का यह अब तक का सबसे संभावनाशील दौर है। बेशक, श्रीकांत ने कहा है कि वह नंबर वन बनने के बारे में विचार न कर अपने खेल पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं, लेकिन उन्होंने खेल प्रेमियों के मन में उम्मीद जगा दी है कि शिखर उनसे दूर नहीं है।

लोकतंत्र में फतवा

लड़कियों के पांवों में बेड़ियां पहना देने से उनके लोकतांत्रिक अधिकारों का क्या होगा? जब गैर मुस्लिम महिलाओं पर इस किस्म की बंदिशें नहीं हैं, तो फिर मुस्लिम महिलाओं ने ही कौन-सा गुनाह किया है?

तस्लीमा नसरीन, चर्चित लेखिका

देवबंद के दारूल उलूम मदरसा से फतवा जारी करना जायज है? कुछ दिन पहले इस मदरसे ने फतवा जारी किया कि लड़कियों के बाल काटना और भौंहें तराशना इस्लाम में हराम है। मौलाना सादिक काशमी का कहना है कि लड़कियों का ब्यूटी पार्लर जाना भी हराम है। लड़कियों के नौकरी कर पैसा कमाने के खिलाफ भी देवबंद ने 2010 में फतवा जारी किया था। कहते हैं, इस्लाम नहीं चाहता कि लड़कियां घर से बाहर कदम रखे, ऑफिस जाए, मर्दों के साथ एक ही दफ्तर में बैठें। मौलानाओं के पास क्या और कोई काम नहीं है कि वे लड़कियों के बाल, भौंह, पैर और सेल्फी की चिंता में लग गए हैं? औरतें क्या खाएंगी, क्या पहनेंगी, कैसे चलेंगी, इस बारे में पहले भी पुरुष समाज की ओर से दिशा-निर्देश जारी होते थे और अब भी हो रहे हैं। 21वीं सदी में भी यह एलान किया जा रहा है कि औरतों का बाल काटना, भौंहें तराशना, ब्यूटी पार्लर जाना हराम है। समाज चाहता है कि औरतें घर के अंदर रहें, बच्चों का पालन-पोषण करें और पति का हर हुक्म मानें। औरतों को और कुछ करने की जरूरत नहीं है।

जब-तब मैं सुनती हूं कि इस्लाम शांति का धर्म है। इस्लाम ने हमेशा औरतों की कद्र की है। इस्लाम से जुड़ी इन बातों का मौलानाओं के फतवे से कोई तारतम्य भी तो होना चाहिए। फतवे तो इससे उलट ही जारी होते हैं- लड़कियां कॉलेज-विश्वविद्यालयों में नहीं पढ़ सकतीं। वे नौकरी नहीं कर सकतीं। वे अपना कोई कारोबार नहीं कर सकतीं। वे मोबाइल का इस्तेमाल नहीं कर सकतीं, घर से बाहर नहीं निकल सकतीं, पति और परिवार-समाज से अलग अपनी राय नहीं दे सकतीं, वे प्रेम नहीं कर सकतीं, अपनी पसंद से शादी नहीं कर सकतीं, पराए मर्दों के साथ मुलाकात और बातचीत नहीं कर सकतीं, हिजाब और बुर्के के बगैर बाहर कदम नहीं रख सकतीं, पति के हुक्म की अवहेलना नहीं कर सकतीं, बच्चों के लालन-पालन में कोई कसर नहीं छोड़ सकतीं, जोर से हंस नहीं सकतीं, जोर से बात नहीं कर सकतीं। ऐसे असंख्य दिशा-निर्देश हैं। क्या इसी तरह औरतों की कद्र जाएगी? जिसका पुरुष की कन्या, पुरुष की स्त्री, पुरुष की मां और पुरुष की बहन के अलावा और कोई परिचय नहीं दिया जा सकता, वास्तविकता यह है कि उसे कोई मर्यादा ही नहीं दी जा रही। पुरुषसत्तात्मक धर्म और समाज में औरतों का एक ही परिचय है-वह दासी है, दिखावे के तौर पर आप चाहे उसे जिस भी नाम से पुकार लें।

धर्म को राष्ट्र से अलग किए बगैर जिस तरह राष्ट्र का धर्मनिरपेक्ष होना संभव नहीं है, उसी तरह समाज से धर्म को अलग किए बगैर समान अधिकार की बुनियाद पर एक संतुलित और सभ्य समाज का निर्माण भी मुमकिन नहीं है। सभ्य समाज के निर्माण के लिए इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है। धर्म को समाज और राष्ट्र से हटाकर व्यक्तिगत आस्था के दायरे में आज नहीं, तो कल लाना ही होगा। नारी अधिकार का सम्मान करने के लिए, वाक स्वाधीनता को मानने के लिए, गणतंत्र को सही अर्थ में सुप्रतिष्ठित करने के लिए सार्वजनिक एवं निजी-सभी प्रतिष्ठानों को कट्टरवाद से मुक्त करना होगा। देवबंद में धर्म की चर्चा हो, इसमें कोई हर्ज नहीं है। लेकिन वहां से कट्टरवाद को पोषित करने वाले बयान या टिप्पणी सामने आएं, तो मुश्किल है। ऐसे में ही फतवे जारी होते हैं।

लोकतंत्र में फतवे के लिए कोई जगह नहीं है। मुस्लिम लड़कियों के पांवों में बेड़ियां पहना देने से उनके लोकतांत्रिक अधिकारों का क्या होगा? भारत में गैर मुस्लिम महिलाओं पर जब इस किस्म की बंदिशें लागू नहीं होतीं, और उचित ही नहीं होतीं, तो मुस्लिम महिलाओं ने ही कौन-सा गुनाह किया है? त्रासदी यह भी है कि गैर मुस्लिम नहीं, खुद मुसलमान ही मुस्लिम लड़कियों, महिलाओं को आजादी से सांस लेने देने में बाधा खड़ी करते हैं। हम कितने आधुनिक और सभ्य हैं, यह इस पर तय करता है कि हमारे समाज की लड़कियों और महिलाओं की स्थिति क्या है।

मुसलमान ही जब मुसलमान का शत्रु बन जाए, तो मुस्लिम समाज के लिए विकास के रास्ते पर आगे बढ़ना कठिन हो जाता है। महिलाओं की आजादी के विरुद्ध फतवा जारी करना, प्रगतिशील लेखकों को फांसी देने के लिए एकजुट होना, धर्म के नाम पर गैर मुस्लिमों से घृणा करना, उदारचेता लोगों की हत्या करना-यह सिलसिला चलता ही आ रहा है। बहुतेरे लोग कहते हैं कि सिर्फ मिस्र के अल अजहर विश्वविद्यालय को ही फतवा जारी करने का अधिकार है। उस प्रसिद्ध विश्वविद्यालय से कुछ साल पहले एक फतवा जारी हुआ था कि मुस्लिम महिलाएं अगर ऑफिस में काम करना चाहती हैं, तो उन्हें अपने सहकर्मियों को अपना स्तनपान कराना होगा। इससे पुरुष सहकर्मी उनकी संतान जैसे हो जाएंगे! इस तरह के असभ्य, अस्वाभाविक, अयौक्तिक और अमानवीय फतवे देख लोग हंसते हैं, क्षुब्ध होते हैं।

यह कहा जाता है कि एक समय मुसलमानों ने विज्ञान के क्षेत्र में बहुत काम किया था। उन्होंने अनेक आविष्कार किए थे। निश्चय ही यह गर्व का विषय है, लेकिन आज मुसलमान जो कर रहे हैं, वह कितना विज्ञानसम्मत है, यह देखने की चीज है। क्या पत्थर मार-मारकर लड़कियों की हत्या कर देने की आदत बंद हुई है? क्या महिलाओं को दासता की बेड़ी से मुक्त कर दिया गया है? क्या औरतों के शरीर पर पुरुषों का हस्तक्षेप खत्म हुआ है? जब तक ये सारे कदम नहीं उठाए जाएंगे, तब तक सभ्यता के पहले कदम तक भी नहीं पहुंचा जा सकेगा। लिहाजा लड़कियों, महिलाओं के विरुद्ध जारी किए जाने वाले फतवे बंद होने चाहिए। देश में कानून है, इसलिए फतवों की जरूरत नहीं है। जब लोकतंत्र है, तब महिलाओं के जीवन में जहर भर देने का अधिकार किसी को क्यों मिलना चाहिए? जहां छोटें-बड़े, अमीर-गरीब, हिंदू-मुसलमान-सभी लोकतंत्र के अधिकारों का समान रूप से उपभोग कर पाते हैं, वहीं तो वास्तविक लोकतंत्र है।

अतीत की यादें राहत देती हैं, क्योंकि वे बीत चुकी होती हैं

अंतर्ध्वनि

ग्रेस पाली

लेखिका बनने से पहले मैं अंशकालिक तौर पर काम करती थी। मेरा बहुत सारा काम अटका पड़ा रहता था, क्योंकि मैं बहुत आलसी थी। छब्बीस-सत्ताईस वर्ष की उम्र में ही मैं मां बन गई थी और अपने बच्चे को दोपहर में पार्क ले जाती थी। मैं वाशिंगटन स्क्वायर पार्क में घंटों समय बिताती थी। मैं खुद को आलसी कह रही हूं, लेकिन वास्तव में यह दो बच्चों को पालने की थकान थी। पीछे मुड़कर जब उन दिनों को

याद करती हूं, तो मुझे बहुत खुशी मिलती है। अतीत की यादें राहत का एहसास कराती हैं, क्योंकि बुरा होने पर भी वे बीत चुकी होती हैं। उन्हीं दिनों मैंने एक सहकर्मी के रूप में महिलाओं को बहुत करीब से समझना शुरू किया। जब मैं अपने बच्चों के साथ खेल के मैदान में नहीं होती थी, उस समय मैं कहानियां लिखती थी। जब मैंने तीन कहानियां लिखीं, उसे तो अपने पूर्व पति को दिखाया। उन्हें वे कहानियां बहुत पसंद आईं और उन्होंने उसे अपने कुछ मित्रो को पढ़वाया। बच्चे उस समय छोटे थे और पड़ोस के बच्चों के साथ खेलते थे। इसलिए मैं पड़ोस की अन्य मांओं को भी जानती थी। उन्हीं में से एक महिला, जिन्हें मेरे पति ने उन कहानियों को पढ़ने के लिए कहा था, मुझसे मांगकर वे कहानियां ले गईं। वे कहानियां उन्हें इतनी पसंद आईं कि उन्होंने कहा, सात और कहानियां लिखो, तब मैं इसे किताब के रूप में प्रकाशित करूंगी। इस तरह मेरी पहली किताब प्रकाशित हुई। मैं किसी को खुश करने के लिए नहीं लिखती हूं, लेकिन लेखन के लिए यह जरूरी है कि वह लोगों को पसंद आए। कभी-कभी कहानी का विचार किसी वाक्य से सूझता है।

-मशहूर अमेरिकी लेखिका

मंजिलें और भी हैं

>> छोटी कुमारी सिंह

सौ से अधिक बच्चों को पढ़ाई से जोड़ा

मैं बिहार के भोजपुर जिले की रहने वाली बीस वर्षीया लड़की हूं। मैंने तीन साल पहले अपने गांव रतनपुर में रहने वाले मुसहर जाति के लोगों को शिक्षित करने की पहल शुरू की थी। मुझे इस काम की प्रेरणा आध्यात्मिक और मानवतावादी माता अमृतानंदमयी देवी (अम्मा) के प्रतिष्ठित अमृतानंदमयी मठ द्वारा संचालित एक कार्यक्रम में शामिल होने के बाद मिली थी। दरअसल उस कार्यक्रम में पिछड़े गांवों के वंचित तबकों के लोगों को शिक्षित करना और उन्हें स्वावलंबी बनाने के काम पर जोर दिया गया था। मठ के सभी अनुयायियों से अपेक्षा की गई थी कि वे इस अभियान में सहयोग दें। मठ ने उस वक्त बिहार के पांच गांवों को गोद ले रखा था, जहां योग, ध्यान, निःशुल्क चिकित्सा शिविर जैसे तमाम तरह के सामाजिक कार्यक्रम चलाए जा रहे थे। तब मेरी उम्र मात्र सत्तरह साल थी। मुझे लगा कि मैं भले ही कोई बड़ी मदद न कर सकूं, पर मैं अपने स्कूल से लौटने के बाद मुसहर समुदाय के बच्चों को ट्यूशन तो पढ़ा ही सकती हूं।

मुसहर समुदाय की महिलाओं की आर्थिक सुरक्षा के लिए मैंने एक स्वयं सहायता समूह की भी शुरुआत की है।

मठ के विभिन्न कामों के महायज्ञ में अपनी आहुति देने का मेरा संकल्प इसी काम से शुरू हुआ। हालांकि मुसहर बच्चों को अपनी ट्यूशन कक्षाओं तक लाना मेरे लिए एक कठिन काम था, क्योंकि उनके माता-पिता ने उन्हें शिक्षित करने में कभी भी दिलचस्पी नहीं दिखाई। और गरीबी इसकी बड़ी वजह थी। मैं बच्चों को इकट्ठा करने के लिए इन परिवारों के घर-घर गई और उनके माता-पिता को समझाने की कोशिश की। धीरे-धीरे ही सही, मेरी कोशिशें रंग लाने लगीं। मैं अपनी कक्षाओं तक कुल 108 बच्चों को खींच लाई। कुल एक हजार से भी कम की आबादी वाले गांव में यह संख्या यकीनन मेरा उत्साह बढ़ाने वाली मानी जा सकती थी।

बावजूद इसके शुरू में इन बच्चों के अधिकांश परिजनों का रवैया मेरे जैसी राजपूत लड़की के लिए बहुत अच्छा नहीं रहा। इसके पीछे भी उनकी जीवनचर्या दोषी थी। वे शराब पीते थे, जुआ खेलते थे और मुझे गालियां देने से भी नहीं हिचकते थे। पर कुछ वक्त के बाद मेरे और मठ के कार्यों के द्वारा गांव में आए सकारात्मक बदलावों से परिस्थितियां अपेक्षाकृत अनुकूल बन गईं। मैंने अपनी ट्यूशन कक्षाओं में सामान्य पढ़ाई के अलावा बच्चों को साफ-सफाई के बारे में समझाना शुरू किया। वे बच्चे हफ्ते या पंद्रह दिनों में एक बार नहाते थे। और तो और उनमें से कई बच्चे नशा करके पढ़ने आते थे। निश्चय ही मेरे लिए उनकी आदतें बदलना एक बड़ी चुनौती थी, मगर समय के साथ यह सब कुछ बदल गया है।

इसके अलावा मैं इस समुदाय की महिलाओं के लिए भी काम करती हूं। उनकी आर्थिक सुरक्षा के इरादे से मैंने एक स्वयं सहायता समूह की शुरुआत की है, जिसकी सभी महिला सदस्यों द्वारा प्रति महीना बीस रुपये के अंशदान को घरेलू प्रयोजनार्थ एक साझा बैंक खाते में जमा किया जाता है। समाज के अंतिम पायदान पर माने जाने वाले दलित वर्ग के मुसहर समुदाय के लोगों की मदद करने पर मुझे स्विट्जरलैंड स्थित विमेंस वर्ल्ड समिट फाउंडेशन ने ग्रामीण परिवेश में महिलाओं द्वारा किए जाने वाले रचनात्मक कार्यों की श्रेणी में सम्मानित किया है। मुझे खुशी है कि मैं यह सम्मान पाने वाली सबसे कम उम्र की लड़की हूं, पर मुझे इससे भी ज्यादा अच्छा मेरे पढ़ाए बच्चों के जीवन में आए बदलाव को देखकर लगता है।

-विभिन्न साक्षात्कारों पर आधारित।

विभागीय स्थायी समिति की अहमियत

इन समितियों की एक प्रमुख कमजोरी अनुसंधान सहायकों का अभाव है। समितियों को संसद के सामान्य कर्मचारियों का समर्थन मिलता है, लेकिन समर्पित शोध सहायकों का अभाव है। हालांकि विभागीय स्थायी समितियों का अनुभव अपने देश में सफल रहा है।

एम आर माधवन

भारतीय लोकतंत्र में अपने महत्वपूर्ण कार्यों के जरिये संसद केंद्रीय भूमिका निभाती है। संसद के दोनों सदन, लोकसभा और परोक्ष रूप से निर्वाचित राज्यसभा विभिन्न प्रक्रियाओं के माध्यम से सरकार के कामकाज की जांच करती हैं। दोनों सदनों से अलग संसद के कामकाज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा समितियों द्वारा पूरा किया जाता है। संसद ने हाल ही में विभिन्न विभागीय स्थायी समितियों का पुनर्गठन किया है, जो मुख्यतः तीन काम करती हैं-उसके पास भेजे गए विधेयकों की जांच करना, मंत्रालयों से संबंधित विभिन्न विषयों का चयन करना और सरकार के क्रियान्वयन व विभागों के बजटीय परिव्यय की जांच करना। उनका कामकाज संसद की समग्र प्रभावशीलता पर असर डालता है, जो कानून बनाती है, सरकार को जवाबदेह बनाती है और सार्वजनिक खर्च के लिए मंजूरी देती है।

ये समितियां कई उद्देश्यों को पूरा करती हैं। पहला, वे संसद को अपने कामकाज के बेहतर प्रबंधन में मदद करती हैं। दूसरा, वे उन विशेषज्ञों का इनपुट उपलब्ध कराने में सक्षम हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से नीति या कानून को प्रभावित कर सकते हैं। तीसरा, प्रत्यक्ष सार्वजनिक नजर से दूर रहने के कारण वे सदस्यों को अपने मतदाताओं के दबावों की चिंता किए बगैर मुद्दों पर चर्चा करने और सहमति पर पहुंचने की अनुमति देती हैं। भारतीय संदर्भ में इसका चौथा लाभ यह है कि सदस्यों पर दलबदल विरोधी कानून लागू नहीं होता, इसलिए आम तौर पर फैसले दलगत आधार पर नहीं होते। अंत में, ये समितियां सदस्यों को कुछ विशिष्ट क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करने और अपनी विशेषज्ञता बनाने की इजाजत देती हैं, जिससे उन्हें मुद्दों की बेहतर पड़ताल करने में मदद मिलती है।

विभागीय स्थायी समिति आमतौर पर विधेयकों की छानबीन के लिए विशेषज्ञों को आमंत्रित करती है। हालांकि ऐसा हमेशा नहीं होता, यहां तक कि व्यापक असर वाले विधेयक के लिए भी कभी-कभी विशेषज्ञों को आमंत्रित नहीं किया जाता। सभी विधेयक समिति के पास नहीं भेजे जाते। समिति के सुझाव बाध्यकारी नहीं होते। सरकार या कोई सदस्य चाहे तो प्रासंगिक संशोधन को सदन में मंजूरी के लिए पेश कर सकता है। लेकिन पूरे सदन को ही विधेयक पर अंतिम फैसला लेने का अधिकार है। यहां एक नई प्रवृत्ति को उजागर करना प्रासंगिक होगा। वित्त मंत्रालय द्वारा संचालित कई विधेयकों को विभागीय स्थायी समिति के बजाय विशेष रूप से गठित संयुक्त समितियों को भेजा गया है। हालांकि इसका वास्तविक कारण किसी को पता नहीं है, लेकिन ध्यान देने वाली बात है कि विभागीय स्थायी समितियों की अध्यक्षता कांग्रेस के सदस्य कर रहे हैं, जबकि संयुक्त समिति की अध्यक्षता भाजपा सदस्य के पास है।

इन समितियों की एक प्रमुख कमजोरी अनुसंधान सहायकों का अभाव है। समितियों को संसद के सामान्य कर्मचारियों का सहयोग मिलता है, लेकिन समर्पित शोध सहायकों का अभाव है। हालांकि विभागीय स्थायी समितियों का अनुभव अपने देश में सफल रहा है, इसलिए इसकी क्षमता को बढ़ाना जरूरी है, ताकि मुद्दों की बेहतर छानबीन हो और संसद को कानून बनाने और जवाबदेही की भूमिका बेहतर ढंग से निभाने में मदद मिल सके। इसमें सभी विधेयकों की अनिवार्य जांच, शोध दल का गठन, पैरोकार समूहों प्राप्त इनपुट में पारदर्शिता में सुधार शामिल होगा।

-लेखक पीआरएस लेजिस्लेटिव के सह संस्थापक और अध्यक्ष हैं

खुली खिड़की

कंप्यूटर सॉफ्टवेयर का बढ़ता निर्यात

देश में कंप्यूटर सॉफ्टवेयर और उससे जुड़ी सेवाओं का निर्यात वर्ष 2008-09 में 2.27 लाख करोड़ रुपये का था, जोकि वर्ष 2016-17 में बढ़कर 7.44 लाख करोड़ रुपये का हो गया है। इस अवधि के दौरान सबसे बड़ी वृद्धि 2012-13 में देखी गई, जब निर्यात ने पांच लाख करोड़ रुपये का आंकड़ा पार किया था।

सॉफ्टवेयर और उससे जुड़ी सेवाओं का निर्यात

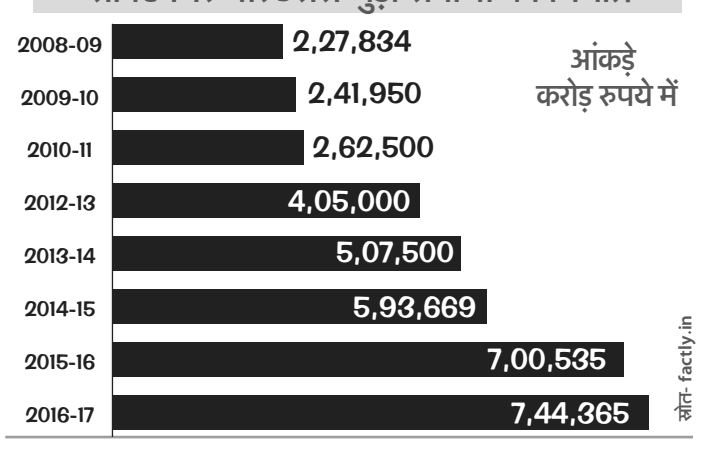

जहां मृत्यु न हुई हो!

सत्संग

एक सभा में महात्मा बुद्ध संसार में व्याप्त प्राणियों की पीड़ा और क्षणभंगुर संसार पर भाषण कर रहे थे। उसी समय सभा के एक कोने से आवाज आई। एक विधवा ब्राह्मणी अपनी गोद में एक बच्चे को उठाए आई। महात्मा बुद्ध के चरणों में बालक को रखकर बोली- महात्मा जी, मौत की वेदना क्या होती है, यह मुझसे पूछो! मेरा एकमात्र लाल मुझे छोड़कर चला गया! उस मृत बालक को गोद में लेकर बुद्ध बोले- बालक बहुत सुंदर है और उससे भी सुंदर उसकी मां है। यदि मैं तुम्हारे बालक को जीवित कर दूं तो? विधवा बोली- महाराज, मेरा बेटा मुझे वापस मिल जाए, तो मैं अपना सर्वस्व न्योछावर कर सकती हूं। महात्मा बुद्ध ने उत्तर दिया-ठीक है, तुम मुट्ठी भर पीली सरसों के दाने लाकर दो। वह विधवा दाने लेने के लिए तेजी से बढ़ी, तो महात्मा बुद्ध बोले-मां! ये पीली सरसों के दाने ऐसे घर से लाना, जहां कभी कोई मृत्यु न हुई हो। महात्मा की बात सुनकर विधवा तेजी से दौड़ी। एक दरवाजे पर गई और भीख के लिए पुकार लगाई। गृहपति ने दरवाजे पर आकर पूछा- क्या चाहिए? केवल मुट्ठीभर पीली सरसों के दाने! गृहपति सरसों के दाने लेने के लिए घर में घुसने लगा तो उन्हें रोक कर विधवा ने अपनी शर्त रखी। गृहपति ने उत्तर दिया-मां, क्या कहती हो! ऐसा कौन-सा घर है, जहां कभी किसी की मृत्यु न हुई हो? ब्राह्मणी महात्मा बुद्ध के पास पहुंची और बोली-मुझे ऐसा कोई घर नहीं मिला, जहां कभी कोई मृत्यु न हुई हो। मेरी आंखें खुल गई हैं।

-संकलित

हरियाली और रास्ता

दो बच्चे, रसगुल्ले और कामरान

दो बच्चों की कहानी, जिनके अपनी मां के प्रति प्रेम ने कामरान की जिंदगी बदल दी।

कामरान घर का सामान लेने के लिए पहले एक सुपर मार्केट गया था। उस दिन सुपर मार्केट में बहुत भीड़ थी। लाइन में खड़े-खड़े कामरान को ख्याल आया कि क्यों न पहले कुछ खा लिया जाए। तब तक लाइन भी कम हो सकती है। वहीं एक मिठाई की दुकान थी। कामरान ने वहां से दो रसगुल्ले लिए और एक कोने में बैठकर खाने लगा। बैठे-बैठे उसने देखा, वहां दो छोटे-छोटे बच्चे रसगुल्ले लेने आए थे। एक लगभग

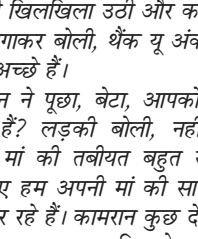

10 साल का लड़का था और एक शायद छह साल की लड़की थी। लड़की अपने हाथ में एक छोटा-सा गुल्लक लिए हुए थी, उसके चेहरे पर बेशुमार खुशी झलक रही थी। लड़का शांत था। उन दोनों ने दो रसगुल्ले पैक कराए और उसका भुगतान करने के लिए काउंटर पर बैठी महिला को दे दिए। महिला बोली, चालीस रुपये। लड़के ने अपनी बहन के हाथ से वह गुल्लक लिया और काउंटर पर रखकर सिक्के गिनने लगा। लेकिन उसमें केवल 32 रुपये ही निकले। उसने लंबी सांस ली और अपनी बहन से बोला, अनु, हम सिर्फ एक ही रसगुल्ला ले सकते हैं। अनु बोली, लेकिन भैया, मां को रसगुल्ले बहुत पसंद हैं। भाई बोला, हम सिर्फ एक ही रसगुल्ला ले सकते हैं। वह लड़का वापस काउंटर पर बैठी महिला की तरफ मुड़ा और बोला, आप सिर्फ एक ही रसगुल्ला दे दीजिए। कामरान यह सब देख रहा था। वह खड़ा हुआ, सौ रुपये का नोट निकालकर बोला, रसगुल्ले कम मत कीजिएगा। यह लीजिए, इनके रसगुल्ले के पैसे। वह देखकर लड़की खिलखिला उठी और कामरान को गले लगाकर बोली, थैंक यू अंकल। आप बहुत अच्छे हैं।

कामरान ने पूछा, बेटा, आपको रसगुल्ले पसंद हैं? लड़की बोली, नहीं अंकल, हमारी मां की तबीयत बहुत खराब है। इसीलिए हम अपनी मां की सारी इच्छाएं पूरी कर रहे हैं। कामरान कुछ देर के लिए स्तब्ध रह गया। उस दिन से कामरान की जिंदगी बदल गई।

कभी-कभी दूसरों को सुख पहुंचाकर भी खुशी मिलती है और जीवन के मायने बदल जाते हैं।